International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(3): 256-258

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(3): 256-258
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 22-02-2023
Accepted: 27-04-2023

Rekha Arora
Associate Professor, Department of Sanskrit, Miranda House, New Delhi, India

Corresponding Author:
Rekha Arora
Associate Professor, Department of Sanskrit, Miranda House, New Delhi, India

रघुवंश महाकाव्य और भारतीय संस्कृति

Rekha Arora

सारांश
रघुवंशम्' कविकुलगुरू कालिदास का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। महाकवि कालिदास भारतीय संस्कृति के अप्रतिम पुजारी हैं, उनकी कृतियों में भारतीय संस्कृति के महनीय आदर्शों और नैतिक जीवन मूल्यों का हृदयहारी चित्रण हुआ है। रघुवंश महाकाव्य में भी हमें यह विशेषताएं पग–पग पर विलसित दिखाई देती हैं। महाकाव्य के प्रथम सर्ग के प्रारंभ से ही कवि विभिन्न रूपों में भारतीय संस्कृति के भव्य रूप का चित्रांकन आरंभ कर देते हैं। स्वयं को मंदबुद्धि कहकर वे यह प्रदर्शित करते हैं कि विद्वत्ता की शोभा विनम्रता में ही निहित है। तत्पश्चात् रघुवंशी राजाओं का चरित्र भारतीय संस्कृति की संपूर्ण विशेषताओं को एकत्रित कर हमारे समक्ष प्रस्तुत कर देता है।

कूटशब्दः कालिदास, महाकाव्य, भारतीय संस्कृति, रघुवंश महाकाव्य

प्रस्तावना
किसी भी देश की संस्कृति, उसके आचार–विचार, मान्यताओं और संस्कारों का प्रतिरूप होती है। साहित्य में संस्कृति का दिग्दर्शन अनायास एव हो जाता है क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण होता है। कविकृत वर्णन संस्कृति से अछूते नहीं रह सकते। लघुत्रयी में सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य के रूप में परिगणित रघुवंश महाकाव्य में यत्र–तत्र–सर्वत्र भारतीय संस्कृति का विलास दृष्टिगोचर होता है। भारतीय संस्कृति की उदात्तता जैसी रघुवंश में प्रस्फुटित हुई वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। प्रस्तुत पत्र में उसकी कुछ मुख्य विशेषताओं का विश्लेषण किया है।

विनम्रता
विनयशीलता अथवा विनम्रता हमारी संस्कृति का महत्त्वपूर्ण गुण है। इसके दर्शन हमें रघुवंश के आरंभ में ही हो जाते हैं। अद्वितीय प्रतिभा के धनी होने पर भी महाकवि कालिदास अपने आपको मन्दबुद्धि कहते हुए अपनी विनम्रता का प्रदर्शन करते हैं –

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषयाः मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।।[1]

'भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैः'[2] जिस प्रकार वृक्ष फलोद्गम से झुक जाते हैं उसी प्रकार रघुवंश में वर्णित प्रायः सभी राजा ऐश्वर्य, संप्रभुता की अधिकता पर भी अत्यंत विनम्र थे, राजा दिलीप अपने राज्य के सातों अंगों में कुशलता का श्रेय अपने गुरु वशिष्ठ को ही देते हैं, अपनी शासन कुशलता को नहीं –

उपपन्नं ननु शिवं सप्तस्वंगेषु यस्य मे।
दैवीनां मानुषीणां च प्रतिहर्ता त्वमापदाम्।।[3]

उन्हें अपनी योग्यता का तनिक भी अहंकार न था।

आस्तिकता
रघुवंश में ईश्वर और वेदों के प्रति परम आस्था व्यक्त की गई है। ईश्वर की इच्छा को ही यहाँ सर्वोपरि बताया गया है –

विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया।[4]

वेदादि शास्त्रों का अध्ययन तत्कालीन जीवन का अभिन्न अंग था। वशिष्ठ, वाल्मीकि, विश्वामित्र प्रभृति महर्षि अपने आश्रमों में शिष्यों को शास्त्रों का ज्ञान प्रदान किया करते थे। रघुवंशी राजा बाल्यकाल में विविध शास्त्रों का अध्ययन कर शास्त्रज्ञान से तेजस्वी थे। दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, लव, कुश सभी शास्त्रों में कृतभूरिपरिश्रम थे। दिलीप का शास्त्राध्ययन विलक्षण था–

आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः।
आगमैः सदृशारम्भः आरम्भसदृशोदयः।।[5]

दिलीप ने अपने पुत्र का नामकरण रघु इसलिए किया ताकि वह समस्त शास्त्रों और शत्रुओं के पार जाए –

श्रुतस्य यायादयमन्तमर्भकस्तथा परेषां युधि चेतिपार्थिवः।
अवेक्ष्य धातोर्गमनार्थमर्थविच्चकार नाम्ना रघुमात्मसंभवम्।।[6]

यागादि परम्परा

भारतीय संस्कृति यज्ञप्रधान थी। यज्ञ दुरितों का विनाश करने के साथ ही पर्यावरण के संरक्षण में भी सहायक होते हैं। रघुवंश में यज्ञ यागादि के प्रति महती श्रद्धा का भाव दिखाई देता है। दिलीप के द्वारा दान दिए ग्रामों में यज्ञ स्तम्भों के होने के उल्लेख से यागादि के प्रति विशेष विश्वास दिखाया गया है –

राजाओं और आश्रमों की यज्ञशालाओं में नियमित रूप से यज्ञ होते थे। रघु अपने यहाँ आए तपोनिष्ठ ब्रह्मचारी को अपनी यज्ञशाला में ठहरने का आग्रह करते हैं –

स त्वं प्रशस्ते महिते मदीये वसंश्चतुर्थोऽग्निरिवाग्न्यागारे।[7]

यज्ञानुष्ठानी ऋषियों के विघ्नों को दूर करने के लिए ही राम और लक्ष्मण, विश्वामित्र द्वारा ले जाए गए थे। (11.30) यज्ञ के बल से परशुराम द्वारा अनेक लोकों को जीते जाने का उल्लेख भी ग्यारहवें सर्ग में मिलता है।

यज्ञों की निर्बाध गति के लिए दिव्य गऊओं की सहायता ली जाती थी। कामधेनु दीर्घकाल तक चलने वाले (1.79) वरुण देवता के यज्ञ में हवि प्रदान करने के लिए पाताल लोक गई थीं। उनकी अनुपस्थिति में उनकी पुत्री नन्दिनी महर्षि वशिष्ठ की यज्ञ–यागादि परंपरा में सहायक थी।

इन्दुमती स्वयंवर में राजा सुषेण की चर्चा हुई है जो विधिपूर्वक यज्ञ करते थे–

नीपान्वयः पार्थिव एष यज्वागुणैर्यमाश्रित्य परस्परेण।[8]

त्यागभाव

त्याग की भावना भारतीय संस्कृति की महती विशेषता है। विश्व की किसी भी अन्य संस्कृति में त्याग भावना को शायद ही इतना महत्त्व दिया गया हो –

"त्यागाय संभृतार्थानाम्"[9]

रघुवंशी राजा दान अथवा त्याग के द्वारा ही कर रूप में गृहीत धन का सदुपयोग करते थे। वे प्रजा से प्राप्त धन को प्रजाहित के लिए सहस्रगुणा अधिक करके व्यय करते थे –

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।।[10]

विजय श्री प्राप्त करने के उपरान्त वे पराजित राजाओं को उनका राज्य लौटा देते थे क्योंकि विजयप्राप्ति ही उनका ध्येय था, धनप्राप्ति नहीं –

यशसे विजिगीषूणां[11]

पृथ्वी पर दिग्विजय करने के उपरान्त रघु ने विश्वजित् यज्ञ किया जिसमें उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति दक्षिणा में प्रदान कर दी –

स विश्वजितमाजह्रे यज्ञं र्स्वस्वदक्षिणम्।
आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव।।[12]

राजा के आदर्श और कर्त्तव्यपरायणता

राजा का कर्त्तव्यपरायण होना किसी भी राष्ट्र की उन्नति का आधारभूत मंत्र है। रघुवंशी राजा इस गुण के मूर्त रूप थे। वे प्रजा के प्रति अपने दायित्वों का पूर्ण निर्वाह करते थे। उनका सर्वोपरि ध्येय प्रजाहित था। वे आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं से प्रजा की रक्षा करने के साथ–साथ उनके कल्याण के समस्त कार्य भी सम्पन्न करते थे। रघु के विषय में कहा गया है –

"जीवन्पुनः शश्वदुपप्लवेभ्यः प्रजाः प्रजानाथ पितेव पासि।"[13]

जिस प्रकार पिता अपनी संतान को अच्छे संस्कार देते हैं उसी प्रकार रघुवंशी राजा प्रजाओं में विनयशीलता का आधान करने, उनका भरण–पोषण, उनकी रक्षा करने के कारण उनके वास्तविक पिता थे –

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः।।[14]

प्रजारंजन के लिए राजा अपने सुखों का भी बलिदान कर दिया करते थे। यद्यपि हमारी संस्कृति में नारी के प्रति श्रद्धा एवं सम्मान को बहुत महत्त्व दिया गया है, लेकिन जब प्रजाहित की बात आती है तो राजा उसे ही प्रमुख स्थान देते थे। प्रजा में असंतुष्टि की भावना व्याप्त न हो, इस हेतु राम ने अपनी निर्दोष पत्नी का भी परित्याग कर दिया। यह रघुवंशी राजाओं के आचरण की पराकाष्ठा थी।

राजा केवल मनुष्यों के प्रति कर्तव्यपरायण न थे अपितु पशु–पक्षियों के प्रति भी उनके मन में सदृश भाव थे। नन्दिनी गाय की रक्षा के लिये राजा दिलीप ने स्वशरीर को सहर्ष ही समर्पित कर दिया।

गुरुभक्ति

रघुवंश महाकाव्य में गुरुओं के प्रति असीम श्रद्धा और भक्ति के भाव सर्वत्र दिखाई देते हैं। सभी राजा गुरुओं का विशेष आदर करते थे। गुरुओं की आज्ञा सर्वोपरि मानी जाती थी 'आज्ञा गुरुणां ह्यविचारणीया' इस सन्दर्भ में वरतन्तु के शिष्य कौत्स का उदाहरण उल्लेखनीय है। कौत्स ने विद्या समाप्ति के उपरान्त अपने गुरु से दक्षिणा माँगने का बार–बार आग्रह किया तो रुष्ट होकर गुरु ने चौदह विद्याओं के शुल्क रूप में चौदह करोड़ स्वर्णमुद्राएँ लाने का आदेश दिया, जो कौत्स के लिए असम्भव कार्य था लेकिन गुरु की आज्ञा पूर्ण करने हेतु वे राजा रघु के पास पहुँचे और गुरु दक्षिणा की व्यवस्था की।

सहनशीलता

जहाँ सहनशीलता होती है वहाँ कार्यों की सिद्धि हो ही जाती है। रघुवंश में राजा दिलीप समस्त भूमण्डल का सम्राट होने पर भी नन्दिनी गाय को छोटी–छोटी इच्छा पूर्ण करने के लिए तदनुरूप व्यवहार करते हैं। जैसे कोमल घास को तोड़कर उसके ग्रास अपने हाथ से गाय के मुख में देना। मच्छर व मक्खियों के बैठने से

जानवरों को जो पीड़ा होती है उसे समझते हुए निरन्तर वह ध्यान रखते थे कि कोई जंगली कीट उसे कष्ट न दे। वे गाय को अपने मन के अनुरूप न चलाकर जहाँ उसकी इच्छा होती वहीं जाने देते, वे नन्दिनी के जल ग्रहण करने पर ही जल की इच्छा करते। इस प्रकार की सहनशीलता दुर्लभ है।

माता–पिता का सम्मान

रघुवंश में 'मातृदेवो भव पितृदेवो भव' की भावना अनेकत्र परिलक्षित होती है। राजा दिलीप और रघु का उदाहरण विशेषतः प्रस्तुत करने योग्य है।

दिलीप ने अश्वमेध के अश्व की रक्षा का भार रघु पर छोड़ा था। सौवें यज्ञ के समय इन्द्र भयभीत हो गए और उन्होंने अदृश्य होकर अश्व चुरा लिया। रघु को जब इस बात का ज्ञान हुआ तो उन्होंने आज्ञाकारी पुत्र की भाँति इन्द्र से युद्ध किया। उनकी वीरता से प्रसन्न होकर इन्द्र ने रघु से अश्व के अतिरिक्त कुछ भी माँगने को कहा तो पितृभक्त रघु ने तत्काल कहा कि – "यदि आप अश्व को नहीं देना चाहते तो वरदान दीजिए कि मेरे पिता विधिपूर्वक यज्ञ समाप्त करके इस अश्व के बिना ही सौ अश्वमेध यज्ञ का फल पा जाएँ।" इस प्रकार रघु ने अपने पिता के अश्वमेध यज्ञ को पूर्ण करवाया –

अमोच्यमश्वं यदि मन्यसे प्रभो ततः समाप्ते विधिनैव कर्माणि।
अजस्रदीक्षाप्रयतः स मद्गुरुः क्रतोरशेषेण फलेन युज्यताम्।।[15]

राम की पितृभक्ति सर्वविदित ही है। जब राम को राज्यसिंहासन दिया जा रहा था तो उन्होंने आँखों में आँसू भरकर उसे स्वीकार किया और जब उनसे वन जाने को कहा गया तो पिता की आज्ञा को उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। इसी प्रकार राम के हृदय में माता कैकेयी के प्रति कभी दुर्भाव उत्पन्न नहीं हुआ। वे सदैव उनसे निश्छल प्रेम करते रहे। कालिदास के अनुसार आदरणीयों का आदर सदैव श्रेयस्कर होता है।[16]

याचकों का सत्कार

रघुवंशी राजा अत्यंत दानी थे और कभी किसी को द्वार से रिक्त हस्त नहीं लौटाते थे। वे आगत के मनोरथ को पूरा करके उन्हें तृप्त सन्तुष्ट किया करते थे –

'यथाकामार्चितार्थिनाम्।'[17]

रघु विश्वजित् यज्ञ में जब अपना सर्वस्व दान कर चुके थे, तभी कौत्स, गुरु दक्षिणा की व्यवस्था के लिए उनके समीप पहुँचे। रघु के हाथ में मिट्टी का पात्र देखकर वह सारी स्थिति समझ गए और निराश होकर वहाँ से जाने लगे तो रघु ने कहा – वेदपाठी ब्राह्मण उनके द्वार से खाली नहीं लौट सकता। रघु जानते थे कि पृथ्वी पर तो धन है ही नहीं, इसलिए उन्होंने धन के स्वामी कुबेर पर आक्रमण करके धन की व्यवस्था करने का निश्चय किया। रघु के आक्रमण की बात जैसे ही कुबेर ने सुनी तो उन्होंने रात्रि में ही सुवर्ण वर्षा कर दी। इस प्रकार रघु ने सुवर्ण से याचक की इच्छा पूर्ण कर उन्हें सत्कृत किया।

नारी प्रतिष्ठा

रघुवंश में नारी के प्रति गौरव और सम्मान का भाव व्यक्त किया गया है। मंत्रणा देने के कारण वह अमात्य है। सुख और दुख दोनों में साथ देने के कारण सखी है, गृहस्थी का पालन–पोषण करने के कारण गृहस्वामिनी है, आदि।[18]

धार्मिक अनुष्ठान में नारी की सहभागिता अनिवार्य होती थी। नन्दिनी गाय की सेवा में सुदक्षिणा का साथ भी आवश्यक था इसलिए वह प्रातःकाल गाय की पूजा–अर्चना कर उसे आश्रम के द्वार तक विदा करने आती थी और संध्याकाल में उसकी अगवानी के लिए तत्पर रहती थी। सीता का परित्याग करने के उपरान्त जब राम ने अश्वमेध यज्ञ किया तो उसमें सीता के स्थान पर उसकी स्वर्णमूर्ति को बैठाकर यह सिद्ध कर दिया कि कोई भी धर्मिक अनुष्ठान पत्नी के बिना अपूर्ण रहता है। इस बात को जानकर सीता जी के मन में छोड़े जाने का जो दुःख था वह समाप्त हो गया।

इस प्रकार रघुवंश महाकाव्य में भारतीय संस्कृति का समुज्ज्वल रूप चित्रित है। महाकवि ने भारतीय जीवन दर्शन और मानवीय मूल्यों का मनोरम उपस्थापन किया है, जो मानव हृदय पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाता है और हमें आह्लादित और गौरवान्वित करता है।

संदर्भ

1. रघुवंश–1.2
2. नीतिशतकम्–69
3. रघुवंश–1.60
   तुलनीय–*वही* 1.61 –
   तव मन्त्रकृतो मन्त्रैर्दूरात्प्रशमितारिभिः।
   प्रत्यादिशन्त इव मे दृष्टलक्ष्यमिदः शराः।।
4. रघुवंश–8.46
5. वही, 1.15
6. वही, 3.21
7. वही, 5.25
8. वही, 6.46
9. वही, 1.7
10. वही, 1.18
11. वही, 1.7
12. वही, 4.86
13. वही, 2.48
14. वही, 1.24 – तुलनीय – अभिज्ञानशाकुन्तलम्–6.23
15. वही, 3.65
16. वही, 1.79 – प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः।
17. वही, 1.7
18. वही, 8.67 – गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियाशिष्या च ललिते कलाविधौ।
    तुलनीय – गरुड़ पुराण, पूर्व खण्ड, आचारकाण्ड, 64.6
    कार्येषु दासी, करणेषु मंत्री, भोज्येषु माता, शयनेषु रम्भा।
    धर्मानुकूला क्षमया धारित्री, भार्या च षाड्गुण्यवतीह दुर्लभा।